"हिंदी उपन्यास साहित्य में आदिवासी विमर्श"

श्री. सुभाष विष्णु बामणेकर
शोधार्थी,
हिंदी विभाग,
शिवाजी विद्यापीठ, कोल्हापूर
मो. 7875586916
Email- bamnekarsv@gmail.com

शोध आलेख का सार -

आदिवासी विमर्श एक नया विमर्श है। बहुत सालों से हाशिए पर रखे गये आदिवासी समुदाय को आज साहित्य में जगह मिल रही है। आदिवासियों व्दारा भी अपने अस्तित्व एवं अस्मिता के लिए संघर्ष किया जा रहा है। आदिवासी साहित्य विधा मे संघर्ष महत्तवपूर्ण 'उपन्यास विधा' रही है। आदिवासी समाज के जीवन संघर्ष के साथ-साथ आदिवासी समाज के सामाजिक जीवन संघर्ष को अभिव्यक्त किया है। उनका विस्थापन, अशिक्षा, अभाव, अंधविश्वास, गरीबि, अस्तित्व एवं अस्मिता का सवाल, विद्रोह, आदि की प्रमुखता मिली है। उपन्यास के माध्यम से आदिवासी यथार्थ को उनके साथ हो रहे शोषण, दमन को केंद्रे मे रखकर उनकी सच्चाई को सामने लाया जा रहा है। वैश्वीकरण के पडिप्रश्न मे एक ओर देश वैश्विक महासत्ता का सपना देख रहा है। वही दूसरी ओर समाज की मूख्य धारा से वंचित, पहाडों और जंगलों में रहनेवाला आदिवासी समाज बुनियादी सुविधाओं से कोसों दूर रहा है। उपेक्षा, अभाव और शोषण की त्रासदी झेल रहा है। आधुनिक माहौल में रहकर भी सबसे पिछडा हुआ समाज कोई है जो वह है आदिवासी समाज है।

मूल शब्द – अस्तित्व, विस्थापन, वैश्वीकरण, अंधविश्वास ।

वर्तमान समय में कई विषयों को लेकर साहित्य का सृजन हो रहा है। साहित्य के माध्यम से ही समाज में स्थिर अनेक विषयों को उजागर हिंदी के लेखक अपने लेखन विषय से करते नजर आते हैं। साहित्य में कई विषयों केो लेकर विमर्श हो रहे है। जिसमें, किन्नर विमर्श, किसान विमर्श, पर्यावरण विमर्श, बाल विमर्श, वृध्द विमर्श, मुस्लिम विमर्श, दिव्यंग विमर्श, दलित विमर्श एवं आदिवासी विमर्श आदिवासी के माध्यम से समाज का वास्तव पाठकों के सामनें आता है। आदिवासी समाज की मुख्य समस्या के रुप में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक आदि को उजागर किया है।

विश्व के हर गाँव में विकास हो रहा है। इन सबके बावजूद आज भी समाज में आदिवासी समाज जंगली, पहाडों की परिस्थितीयों में किसी तरह से अपना जीवन यापन कर रहे है। आदिवासी समाज तक किसी भी प्रकार का विकास नहीं पहुँच पा रहा है। इनका पूर्व जीवन सुखमय था लेकिन आज समाज में आदिवासियों का जीवन शोषित बन गया है। विकास के नाम पर आदिवासी समाज को मूलभूत आवश्यकताओं जैसे जंगल, जल, जमीन से उन्हें बेदखल किया जा रहा है। आदिवासी समाज की अस्मिताएवं अस्तित्व और उनकी संस्कृति पर प्रभाव पड जाता है। आधुनिक सभ्यता के लाभों से वंचित एवं उन्नति के दौर में पिछडे हुए आदिवासियों के जीवन में कुछ हद तक परिवर्तन आया है। इस बदलाव या परिवर्तन श्रेय साहित्य को ही मिलता है।

वस्तूत: किसी देश के मूल निवासी को आदिवासी कहा जाता है। हमारे भारत देश के संदर्भ में कहना हो तो आदिवासी प्राय: जंगल तथ पहाडीं क्षेत्र में रहते है। याह आदिवासी वह है जो वहाँ पहले से निवास करती आई है। डॉ. अर्जुन चव्हाण जी अपनी विमर्श के विविध आयाम (समकालीन हिंदी तथा मराठी-बृहत उपन्यासों के संदर्भ में) किताब में कहते है "जंगल पहाडी प्रदेश तथा दुर्गम भागों में रहने के कारण आदिवासी समाज आज भी पिछडा हुआ नजर आता है। आधुनिककालीन माहौल में भी अगर सबसे पिछडा हुआ समाज कोई है तो हमारे यहॉ आदिवासी समाज है। जंगलो तथा दुर्गम भागों में रहनेवाली वह जनजातियाँ साधनसुविधाओं से वंचित तो है ही लेकिन अज्ञान और अशिक्षा के कारण अपनी रुढि और परंपराओं के चंगुल से बाहर नहीं आ पाई हैं।

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में एक ओर देश वैश्विक महासत्ता का स्वप्न देख रहा है। वहीं दूसरी ओर पहाडों ओर जंगलो में रहनेवाला आदिवासी समाज बुनियादी सुविधाओं से कोसों दूर रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के कई वर्ष बाद भी भारतीय संस्कृति के सच्चे रक्षक थे आदिवासी समाज उपेक्षा, अभाव एवं शोषण की त्रासदी झेल रहे हैं। सरकार व्दारा आदिवासी मंत्रालय से घोषित योजनाएँ उन तक नहीं पहुँच पाती है। हिंदी साहित्य का वर्तमान युग हाशिए पर जीवन जी रहे इस आदिवासी समाज के प्रति संवेदनशील रहा है। हिंदी के साहित्यकारों व्दारा आदिवासी समाज के प्रति गंभीर चिंतन दृष्टिगोचर होता है। प्रकृति के सानिद्य मे

रहनेवाले, अशिक्षा, अंधविश्वास, भुखमरी, शोषण से ग्रस्त आदि पर समकालीन हिंदी उपन्यासों आदिवासी विमर्श को केंद्र मे रखकर अनेक कृतिओं का सृजन हुआ है।

समकालीन हिंदी उपन्यास कृतियों में आदिवासी विमर्श को केंद्र मे रखकर लिखे गए उपन्यासों भरमार है। शिवाप्रसाद सिंह का 'शैलूष', संजीव का पाँव तले की दूब, 'सावधान नीचे आग है', 'जंगल जहाँ शुरु होता है', 'धार' राजेंद्र अवस्थी का 'जंगल के फूल', जाने कितनी आँखे, सूरज की छाँव, मैत्रेयी पूष्पा का अम्ला कबुतरी, राकेश वत्स का 'जंगल के आसपास', मृणाल पाण्डेय का 'देवी', चंद्रकांता का 'कथा सतीसर', हिमांशु जोशी का 'कमार की आग', पुत्नीसिंह का 'सहरान्त', प्रकाश मिश्र का 'जहाँ बास फुलते हैं', मनमोहन पाठक का 'गगन घटा गहरानी', तथा तेजिन्द्रसिंह का 'काला पादरी' जैसे कई उपन्यास है जो आदिवासियों के जीवन को केंद्र में रखकर इनके आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक पहलुओं के साथ आदिवासी समाज का यथार्थ चित्रण किया है।

शिवप्रसाद सिंह के 'शैलूष' उपन्यास की स्त्री रुपा में यही प्रवृत्ति दिखाई देती है कि, "मारकर तोड दूँगी तेरा हाथ रसाला तू क्या समझता है कि नट नटुली जिंदगीभर अनपढ और अंधेरे में ही सडते रहेंगे? म्या उनकी जिंदगानी में कभी रोशनी आएगी ही नहीं?" 2. आदिवासी स्त्री रुपा के इस कथन से आदिवासियों में शिक्षा के प्रति बढती आस्था का और अपनी उपेक्षा के कारण विकसित हो रही चेतना दिखाई देती है। वस्तुत: आदिवासी समाज यहाँ का मूल निवासी है और मूल मालिक भी। जिस पहाड, जंगल या दुर्गम प्रदेश में वह रहता है, वहाँ का मालिक , वह स्वयं है। अनपढ तथा शिक्षा से वंचति होने के कारण दलितो की तरह आदिवासियों का भी शोषण खूब किया गया। शोषण करनेवाले उसी समाज के सत्ताधारी, माफिया, दलाल, ठेकेदार, साहुकार भी दिखाई देते है। यहाँ तक की कॉमरेड नेता भी आदिवासीयों के शोषण में पीछे नहीं हैं। आदिवासीयों के प्रति किसी में भी हमदर्दी या संवेदना नजर नहीं आती है।

संजीव के 'धार' उपन्यास में आदिवासियों के शोषण का चित्रण दिखाई देता है। उद्योग-धंदो का प्रतिनिधि करनेवाले महेंद्र बाबु आदिवासियों के इलाके मे तेजाब का कारखाना शुरु करते है। इसके संदर्भ राजेश्वरी जी लिखा है "आदिवासियों को कई समस्या का सामना करना पडता है। जन्म से मृत्यु तक उनकी जिंदगी कई मुश्किलों से होकर गुजरती है। जीविमोपार्जन हेतु घोर संघर्ष करना पडता है।" 3. इस तरह कारखाने से निकलने वाले कचरें की वजह से गौर की खेती-बाडी, कुँआ-पोखर सब खराब हो जाता है। कुँए का पानी पीने लायक नहीं रहता। सारे खेत बजर हो जाते है। सारे आदिवासी समाज के लोग इस परिवेश के कारण विशक्त हो जाते है। तेजाब की फॅक्टरी का धुआँ आदिवासीयों के लिए जानलेवा था। अत: आदिवासियों को जीवनयापन की समस्या से जुझना पडता है। इसके संदर्भ में खगेन्द्र ठाकुर जी ने लिखा है।" 4. आदिवासियों के साथ समाज के रक्षक अमानवियता का व्यवहार करते है इसका चित्रण मिलता है। उपन्यास में मैना के माध्यम से आदिवासी नारी के संघर्षशील चरित्र को प्रस्तुत किया है।

संजीव के 'धार' उपन्यास में आदिवासीयोंके शोषण का चित्रण दिखाई देता है। उद्योग-धंदो का प्रतिनिधित्व करनेवाले महेंद्र बाबू आदिवासियों के इलाके मे तेजाब का करखाना शुरु करते है। इसके संदर्भ राजेश्वरी जी लिखा है "आदिवासियों को कई समस्या का सामना करना पडता है। जन्म से मृत्यु तक उनकी जिंदगी कई मुश्किलों से होकर गुजरती है। जीविकोपार्जन हेतु घोर संघर्ष करना पडता है।" 3. इस तरह कारखाने से निकलने वाले कचरें की वजह से गॉव की खेती-बाडी, कुँआ-पोखर सब खराब हो जाता है। कुँए का पानी पीने लायक नही रहता। सारे खेत बंजर हो जाते है। सारे आदिवासी समाज के लोग इस परिवेश के कारण विशक्त हो जाते है। तेजाब की फॅक्टरी का धुँआ आदिवासीयों के लिए जानेलेवा था। अत: आदिवासियों को जीवनयापन की समस्या से जुझना पडता है। इसके संदर्भ में खगेन्द्र ठाकुर जी ने लिखा है " उनके संघर्ष की जहिलता के पीछे पूंजीपतियों और सरकारी कुटिलता काम करती रहती है।" 4. आदिवासायों के साथ समाज के रक्षक अमानवियता का व्यवहार करते है इसका चित्रण मिलता है। उपन्यास में मैना के माध्यम से आदिवासी नाही के संघर्षनीय चरित्र को प्रस्तुत किया है।

राजेंद्र अवस्थी कें 'जंगल के फूल' उपन्यास में आदिवासियों के जीवन का चित्रण प्रस्तुत है। यह उपन्यासमध्य प्रदेश के पश्चिम कें स्थित बस्तर और वहॉ के आदिवासियों की पृष्ठभूमि पर आधारित है। बस्तर में 1908 में 'भूमकाल' विद्रोह हुआ था। 'भूमकाल' आंदोलन के पूरे सौ वर्श पूरे हुए फिर भी वहॉ के आदिवासियों को अपनी जमीन पर अधिकार की लडाई शुरु है। लेखक ने बस्तर के आदिवासीयों का घोटूल जीवन, उनकी संस्कृति, रीति-रिवाज, और जीवन के अनेक पहलूओं को केंद्र में रखकर उपन्यास लिखा है । डॉ. अर्जुन चव्हाण जी के विचारों से आदिवासीयों के जीवन के संदर्भ में कहते है, "दुनिया के सादे आदिवासी समान के लोग मानव संस्कृति की मुख्यधारा से अलग हुए व्दीप जैसे है। बिखराव और अभाव आदिवासी जीवन का अभिन्न अंग रहा है।"

रणेन्द्र के " ग्लोबल गॉव के देवता" तथा गायब होता देश इन दोनों उपन्यास कें केंद्र में आदिवासी समाज है | आदिवासी समाज के जीवन यथार्थ का संघर्ष व उनकी चुनौती को दन दो उपन्यास में लेखक ने रेखांकित किया है | गोल्बल गाँव के देवता उपन्यास मे असुरों का संघर्ष चित्रित किया है | उपन्यास मे ललिता के शब्दों में असुर संस्कृति को समझ सकते है | " हमारे महादिनया महोदव वह नही है, लंगटा बाबा के है | हमारे महादेव यह पहाड है | जो हमें पालता है | हमारी सरना भाई न केवल सखुआ गाए में बल्कि सारी वनस्पितीयों मे समाई है | हम सार जीवों सें अपने गोत्र को जोडते है | छोटे जीवों कीट- पतंगों को भी अपने से अलग नही समझते, हमारे यँहा "अन्य" की अवधारणा नही है | जिस समाज के पास इतनी बडी सोच हो असे किसी लंगटा बाबा या किसी और की शरण में जाने की जरुरत ही क्या है ? [6]"उपन्यासकार ने आदिवासी समाज के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विविध पहलुओं पर हो रहे शोषण दमन को ग्लोबल सोच के साथ दिखाया है | आदिवासी समाज तमाम यातनाओं के बाद संघर्ष करना नही छोडता बल्कि निरंतर संघर्ष के लिए, अपने अस्तित्व एंव अस्मिता के लिए संघर्ष करता नजर आता है | लेखक का दूसरा उसके शोषण- दमन संघर्ष को उजागर किया है. प्रसिध्द कथाकार रमेश उपाध्यास इस उपन्यास के बारे में लिखते है | " यह उपन्यास भूमण्डलीय य्थार्थवाद का उत्कृष्ट उदाहरण है |"[7] उपन्यास का प्रमुख पान सोमेश्वर के माध्यम से लेखक ने मुण्डा आदिवासीयों को अपने देश से कितना प्यार है | यह उनके शब्दों मे "सोने जैसा देश " से प्रकट हो जाना है | और वही सोने जैसा देश गायब हो जा रहा है | इसका चित्रण मिलता है | लेखक ने ग्लोबल गाँव के देवता में असुर समुदाय तथा गायब होता देश उन्यास में आदिवासी मुण्डा समुदाय के जीवन को केंद्र में रखकर उनके ऐतिहासिक, सामाजिक, एवं सांस्कृतिक दस्ताऐवज के साथ उनके शोषण के बारे में चित्रण मिलता है | तथा इन समुदायों के संघर्ष को भी बखूबी उजागर किया है |

मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबुतरी' उपन्यास बुंदेलखंड की कबूतरी आदिवासी जनजाती के माध्यम से समाज में 'जन्मजात अपराधी घोषित की गई अनेक जनजातियों का दस्तावेज चित्रित करता है। अंग्रेजो ने सजा तौर पर 1879 के अधिनियम के तहत 'जन्मजात अपराधी' घोषित कर दिया है। उपन्यास की मुख्यपात्र भूरी एक के माध्यम से शोषित तथा संघर्ष करनेवाले स्त्री का यथार्थ जीवन चित्रित किया है।अपने बेटे को सभ्य बनाने के लिए भूरी कबुतरा जीवन तथा बदनामी का बोझ ढोती है। लेकिन बेटे लिए जो सपना था वह दूधा है। वह पुलिस का दलाला बनता है। अत: वह मारा जाता है। यहाँ लेखिका वो कबुतर जनजाति को नारी अपने परिवार के लिए संघर्ष करती दिखाई देती है। "कबुतरा पुरुष या तो जंगल में रहता है या जेल में ….. स्त्रियों शराब की भट्टियों पर या हमारे बिस्तरों पर …" 8. लेखिका ने इन्हीं अपरिचित लोगो की कहानी उपन्यास में कठाई है। उपन्यास में कबुतरी समाज का लगभग संपूर्ण ताना-बाना यहाँ मौजुद है यहाँ, यहाँ के जीवन, प्रेम, झगडे, शौर्य आदि क्षेत्र उमें स्थित जनजातियों के जीवन पर आधारीत वंचित, उपेक्षित और अभावग्रस्त आदिवासी समाज का चित्रण प्रस्तुत किया है।

आदिवासी समाज को केंद्र रखकर तथा आदिवासीयों की समस्याओं पर महत्तवपूर्ण साहित्य हिंदी साहित्य में लिखा गया है। प्रारंभिक हिंदी उपन्यासकारों में प्रमुख रुप से रामचीज सिंह कृत 'वन विहंगिनी, मन्नन व्दिवेदी कृत, 'रामलाल', देवेद्र सत्यार्थी व्दारा 'रथके पहिये', योगेन्द नाथ, व्दारा वनलक्ष्मी, डॉ.रागेव राघव कृत – कबतक पुकारु, नागार्जुन कृत-वरुण के बेटे, संजीव, मनमोहन पाठक, भगवान दासमोखाल, राकेशवत्स, पुन्नी सिंह, तेजिन्दर आदि उपन्यासकारों का प्रमुख रुप से नाम आता है।

अत: आदिवासी-विमर्श की दृष्टि से समकालीन हिंदी आदिवासी उपन्यासों का अध्ययन करने के पश्चात यह निष्कर्ष सामने आता है की इस विषय पर हिंदी उपन्यासों की भरमार है। यह विषय एक शोध विषय बनता है। आदिवासी जीवन चिंतन का विषय है। शोषित, वंचित, उपेक्षित, अभावग्रस्त जीवन जी रहा यह समुदाय, समाज की मुख्य धारा से अलग है। सरकार की योजनाओं का लाभ उनको प्राप्त नहीं हो रहा है। वर्तमान समय में परिणामस्वरुप आदिवासियों के प्रति संवेदना दिखाई दे रही है। उनमें आज संगठन, की भावना पनपने लगी है। अन्याय, शोषण के खिलाप, साहस के साथ विद्रोह कर रहे है। अत: समकालीन हिंदी उपन्यासकारों ने आदिवासी जीवन का चित्रण अत्यंत संवेदना के साथ उजागर किया दृष्टिगोचर होता है ।

संदर्भ ग्रंथ :

1. डॉ. अर्जुन चव्हाण, विमर्श के विविध आयाम, पृ. 181
2. डॉ. अर्जुन चव्हाण, विमर्श के विविध आयाम, पृ. 182
3. डॉ. म.द.क्षीरसागर, डॉ. राजश्री तावरे, हिंदी और मराठी साहित्य में नए साहित्यिक प्रवाह पृष्ठ 133
4. ठाकुर खरेन्द्र, उपन्यास की महान परम्पस पृष्ठ 254
5. डॉ. अर्जुन चव्हाण, विमर्श के विविध आयाम पृष्ठ 185
6. रणेन्द्र , ग्लोबल गाँव के देवता , पृ.72
7. सं लीलाधर मंडलोई, नया ज्ञानोदय, जुलाई 2014. अं.क 137 पृ.110